मुगल बादशाह औरंगजेब का सच सामने लाये भूतपूर्व राज्यपाल

औरंगज़ेब कभी यह सहन नहीं करता था कि उसकी प्रजा के अधिकार किसी प्रकार से भी छीने जाएं, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान।

जयप्रकाश मानस, वरिष्ठ लेखक

'भारतीय संस्कृति और मुग़ल साम्राज्य' किताब में लेखक प्रो. बी. एन पाण्डेय जोकि उड़ीसा के भूतपूर्व राज्यपाल रह चुके हैं, लिखते हैं, जब मैं इलाहाबाद नगरपालिका का चेयरमैन था (1948 से 1953 तक) तो मेरे सामने दाखिल-खारिज का एक मामला लाया गया, जो सोमेश्वर नाथ महादेव मन्दिर से संबंधित जायदाद को लेकर था। मन्दिर के महंत की मृत्यु के बाद उस जायदाद के दो दावेदार खड़े हो गए थे।

एक ने कुछ ऐसे दस्तावेज़ दाखिल किये जो उसके खानदान में बहुत दिनों से चले आ रहे थे। इनमें मुगल बादशाह औरंगज़ेब के फ़रमान भी थे। बादशाह ने इस मन्दिर को जागीर और नक़द अनुदान दिया था। मुझे आश्चर्य हुआ कि यह कैसे हो सकता है कि औरंगज़ेब जैसा क्रूर शासक, जो मन्दिरों को तोडने के लिए कुख्यात है, उसने एक मन्दिर को यह कहकर जागीर दी कि यह पूजा और भोग के लिए दी जा रही है। वो बुतपरस्ती के साथ कैसे अपने को शरीक कर सकता था।

मुझे यक़ीन था कि ये दस्तावेज़ जाली हैं, परन्तु कोई निर्णय लेने से पहले मैंने डॉ. सर तेज बहादुर सप्रू से राय लेना उचित समझा, जो अरबी और फ़ारसी के अच्छे जानकार थे। मैंने दस्तावेज़ उनके सामने पेश कर दिए। उन्होंने दस्तावेज़ों का अध्ययन करने के बाद कहा कि औरंगज़ेब के ये फ़रमान असली और वास्तविक हैं। इसके बाद उन्होंने अपने मुंशी से बनारस के जंगमबाड़ी शिव मन्दिर की फाइल लाने को कहा, जिसका मुक़दमा इलाहाबाद हाईकोर्ट में 15 साल से विचाराधीन था। जंगमबाड़ी मन्दिर के महंत के पास भी औरंगज़ेब के कई फ़रमान थे, जिनमें मन्दिर को जागीर दी गई थी।

इन दस्तावेज़ों ने औरंगज़ेब की एक नई तस्वीर मेरे सामने पेश की, उससे मैं आश्चर्य में पड़ गया। डॉक्टर सप्रू की सलाह पर मैंने भारत के विभिन्न प्रमुख मन्दिरों के महंतों के पास पत्र भेजकर उनसे निवेदन किया कि यदि उनके पास औरंगज़ेब के प्रदान किये वो फ़रमान हों, जिनमें उन मन्दिरों को जागीरें दी गई हों तो वे कृपा करके उनकी फोटो-स्टेट कापियां मेरे पास भेज दें।

अब मेरे सामने आश्चर्य का जखीरा खड़ा था, क्योंकि मुझे उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर, चित्रकूट के बालाजी मन्दिर, गौहाटी के उमानन्द मन्दिर, शत्रुन्जाई के जैन मन्दिर और उत्तर भारत में फैले हुए अन्य प्रमुख मन्दिरों एवं गुरुद्वारों से सम्बन्धित जागीरों के लिए औरंगज़ेब के फरमानों की नक़लें प्राप्त हुईं।

यह फ़रमान 1065 हि. से 1091 हि., अर्थात 1659 से 1685 ई. के बीच जारी किए गए थे। इन दस्तावेजों से प्रमाणित हो जाता है कि इतिहासकारों ने औरंगजेब के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह पक्षपात पर आधारित है और इससे उसकी तस्वीर का गलत रुख सामने लाया गया है।

औरंगज़ेब के फरमानों की जांच-पड़ताल के सिलसिले में मेरा सम्पर्क श्री ज्ञानचंद और पटना म्यूजियम के भूतपूर्व क्यूरेटर डॉ. पी एल. गुप्ता से हुआ। ये दोनों महानुभाव औरंगज़ेब के विषय में अति महत्वपूर्ण रिसर्च कर रहे थे। मुझे खुशी हुई कि कुछ अन्य अनुसंधानकर्ता भी सच्चाई को तलाश करने में व्यस्त हैं और बुरी तरह बदनाम औरंगज़ेब की तस्वीर का सच्चा पक्ष सामने ला रहे हैं।

औरंगज़ेब पर हिन्दू दुश्मनी के आरोप के सम्बन्ध में जिस फरमान को बहुत उछाला गया है, वह 'फ़रमाने-बनारस' के नाम से प्रसिद्ध है, जो बनारस के मुहल्ला गौरी के एक ब्राहमण परिवार से संबंधित है। 1905 ई. में इसे गोपी उपाध्याय के नवासे मंगल पाण्डेय ने सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया था।

इसे पहली बार 'एशियाटिक सोसाइटी' नाम के बंगाल के जर्नल (पत्रिका) ने 1911 ई. में प्रकाशित किया था। फलस्वरूप रिसर्च करने वालों का ध्यान इधर गया। तब से इतिहासकार प्राय: इसका हवाला देते आ रहे हैं और वे इसके आधार पर औरंगज़ेब पर आरोप लगाते हैं कि उसने हिन्दू मन्दिरों के निर्माण पर प्रतिबंध लगा दिया था, जबकि इस फ़रमान का वास्तविक महत्व उनकी निगाहों से ओझल रह जाता है।

यह लिखित फ़रमान औरंगज़ेब ने 15 जुमादुल-अव्वल 1065 हि. (10 मार्च 1659 ई.) को बनारस के स्थानीय अधिकारी के नाम भेजा था, जो एक ब्राहमण की शिकायत के सिलसिले में जारी किया गया था। वह ब्राहमण एक मन्दिर का महंत था और कुछ लोग उसे परेशान कर रहे थे।

फ़रमान में कहा गया है, ''अबुल हसन को हमारी शाही उदारता का क़ायल रहते हुए यह जानना चाहिए कि हमारी स्वाभाविक दयालुता और प्राकृतिक न्याय के अनुसार हमारा सारा अनथक संघर्ष और न्यायप्रिय इरादों का उद्देश्य जन-कल्याण को बढ़ावा देना है और प्रत्येक उच्च एवं निम्न वर्गों के हालात को बेहतर बनाना है। अपने पवित्र कानून के अनुसार हमने फैसला किया है कि प्राचीन मन्दिरों को तबाह और बरबाद नहीं किया जाय, अलबत्ता नए मन्दिर ना बनाए जाएं।

हमारे इस न्याय पर आधारित काल में हमारे प्रतिष्ठित एवं पवित्र दरबार में यह सूचना पहुंची है कि कुछ लोग बनारस शहर और उसके आसपास के हिन्दू नागरिकों और मन्दिरों के ब्राहमणों-पुरोहितों को परेशान कर रहे हैं तथा उनके मामलों में दख़ल दे रहे हैं, जबकि ये प्राचीन मन्दिर उन्हीं की देख-रेख में हैं। इसके अतिरिक्त वे चाहते हैं कि इन ब्राहमणों को इनके पुराने पदों से हटा दें।

यह दखलंदाज़ी इस समुदाय के लिए परेशानी का कारण है। इसलिए यह हमारा फ़रमान है कि हमारा शाही हुक्म पहुंचते ही तुम हिदायत जारी कर दो कि कोई भी व्यक्ति ग़ैर-कानूनी रूप से दखलंदाजी न करे और ना उन स्थानों के ब्राहमणों एवं अन्य हिन्दू नागरिकों को परेशान करे। ताकि पहले की तरह उनका क़ब्ज़ा बरक़रार रहे और पूरे मनोयोग से वे हमारी ईश-प्रदत्त सल्तनत के लिए प्रार्थना करते रहें। इस हुक्म को तुरन्त लागू किया जाये।

इस फरमान से बिल्कुल स्पष्ट हैं कि औरंगज़ेब ने नए मन्दिरों के निर्माण के विरुद्ध कोई नया हुक्म जारी नहीं किया, बल्कि उसने केवल पहले से चली आ रही परम्परा का हवाला दिया और उस परम्परा की पाबन्दी पर ज़ोर दिया। पहले से मौजूद मन्दिरों को ध्वस्त करने का उसने कठोरता से विरोध किया। इस फ़रमान से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह हिन्दू प्रजा को सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत करने का अवसर देने का इच्छुक था।

यह अपने जैसा केवल एक ही फरमान नहीं है। बनारस में ही एक और फरमान मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि औरंगज़ेब वास्तव में चाहता था कि हिन्दू सुख-शान्ति के साथ जीवन व्यतीत कर सकें।

यह फरमान इस प्रकार है, ''रामनगर (बनारस) के महाराजाधिराज राजा रामसिंह ने हमारे दरबार में अर्ज़ी पेश की है कि उनके पिता ने गंगा नदी के किनारे अपने धार्मिक गुरू भगवत गोसाईं के निवास के लिए एक मकान बनवाया था। अब कुछ लोग गोसाईं को परेशान कर रहे हैं। अत: यह शाही फ़रमान जारी किया जाता है कि इस फरमान के पहुंचते ही सभी वर्तमान एवं आने वाले अधिकारी इस बात का पूरा ध्यान रखें कि कोई भी व्यक्ति गोसाईं को परेशान एवं डरा-धमका ना सके, और ना उनके मामले में हस्तक्षेप करे, ताकि वे पूरे मनोयोग के साथ हमारी ईश-प्रदत्त सल्तनत के स्थायित्व के लिए प्रार्थना करते रहें। इस फरमान पर तुरंत अमल किया जाए।''

(तारीख-17 रबी उस्सानी 1091 हिजरी) जंगमबाड़ी मठ के महंत के पास मौजूद कुछ फरमानों से पता चलता है कि औरंगज़ेब कभी यह सहन नहीं करता था कि उसकी प्रजा के अधिकार किसी प्रकार से भी छीने जाएं, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान। वह अपराधियों के साथ सख़्ती से पेश आता था।

इन फरमानों में एक जंगम लोगों (शैव सम्प्रदाय के एक मत के लोग) की ओर से सामने आया, जिस पर शाही हुक्म दिया गया था कि बनारस सूबा इलाहाबाद के अफ़सरों को सूचित किया जाता है कि पुराना बनारस के नागरिकों अर्जुनमल और जंगमियों ने शिकायत की है कि बनारस के एक नागरिक नज़ीर बेग ने क़स्बा बनारस में उनकी पांच हवेलियों पर क़ब्जा कर लिया है। उन्हें हुक्म दिया जाता है कि यदि शिकायत सच्ची पाई जाए और जायदाद की मिल्कियत का अधिकार प्रमाणित हो जाए तो नज़ीर बेग को उन हवेलियों में दाख़िल ना होने दया जाए, ताकि जंगमियों को भविष्य में अपनी शिकायत दूर करवाने के लिए हमारे दरबार में ना आना पड़े।

इस फ़रमान पर 11 शाबान, 13 जुलूस (1672 ई.) की तारीख़ दर्ज है। इसी मठ के पास मौजूद एक-दूसरे फ़रमान में जिस पर पहली रबीउल अव्वल 1078 हि. की तारीख दर्ज़ है, यह उल्लेख है कि ज़मीन का क़ब्ज़ा जंगमियों को दिया गया। फ़रमान में है- ''परगना हवेली बनारस के सभी वर्तमान और भावी जागीरदारों एवं करोडियों को सूचित किया जाता है कि शहंशाह के हुक्म से 178 बीघा ज़मीन जंगमियों (शैव सम्प्रदाय के एक मत के लोग) को दी गई।

पुराने अफसरों ने इसकी पुष्टि की थी और उस समय के परगना के मालिक की मुहर के साथ यह सबूत पेश किया है कि ज़मीन पर उन्हीं का हक़ है। अत: शहंशाह की जान के सदक़े के रूप में यह ज़मीन उन्हें दे दी गई। ख़रीफ की फसल के प्रारम्भ से ज़मीन पर उनका क़ब्ज़ा बहाल किया जाय और फिर किसी प्रकार की दखलंदाज़ी ना होने दी जाए, ताकि जंगमी लोग (शैव सम्प्रदाय के एक मत के लोग) उसकी आमदनी से अपनी देख-रेख कर सकें।''

इस फ़रमान से केवल यही पता नहीं चलता कि औरंगज़ेब स्वभाव से न्यायप्रिय था, बल्कि यह भी साफ़ नज़र आता है कि वह इस तरह की जायदादों के बंटवारे में हिन्दू धार्मिक सेवकों के साथ कोई भेदभाव नहीं बरता था। जंगमियों को 178 बीघा ज़मीन संभवत: स्वयं औरंगज़ेब ही ने प्रदान की थी, क्योंकि एक दूसरे फ़रमान (तिथि 5 रमज़ान, 1071 हि.) में इसका स्पष्टीकरण किया गया है कि यह ज़मीन मालगुज़ारी मुक्त है।

औरंगज़ेब ने एक दूसरे फरमान (1098 हि.) के द्वारा एक दूसरी हिन्दू धार्मिक संस्था को भी जागीर प्रदान की। फ़रमान में कहा गया है, ''बनारस में गंगा नदी के किनारे बेनी माधो घाट पर दो प्लाट खाली हैं। एक मर्क़ज़ी मस्जिद के किनारे रामजीवन गोसाईं के घर के सामने और दूसरा उससे पहले। ये प्लाट बैतुल-माल की मिल्कियत है। हमने यह प्लाट रामजीवन गोसाईं और उनके लड़के को 'इनाम' के रूप में प्रदान किया, ताकि उक्त प्लाटों पर बाहमणों एवं फ़क़ीरों के लिए रिहायशी मकान बनाने के बाद वे खुदा की इबादत और हमारी ईश-प्रदत्त सल्तनत के स्थायित्व के लिए दूआ और प्रार्थना करने में लग जाएं।

हमारे बेटों, वज़ीरों, अमीरों, उच्च पदाधिकारियों, दरोग़ा और वर्तमान एवं भावी कोतवालों को अनिवार्य है कि वे इस आदेश के पालन का ध्यान रखें और उक्त प्लाट, उपर्युक्त व्यक्ति और उसके वारिसों के क़ब्ज़े ही मे रहने दें और उनसे न कोई मालगुज़ारी या टैक्स लिया जाए और ना उनसे हर साल नई सनद मांगी जाए।'' लगता है औरंगज़ेब को अपनी प्रजा की धार्मिक भावनाओं के सम्मान का बहुत अधिक ध्यान रहता था।

असम का उमानन्द मंदिर

हमारे पास औरंगज़ेब का एक फ़रमान (2 सफ़र, 9 जुलूस) है, जो असम के शह गोहाटी के उमानन्द मन्दिर के पुजारी सुदामन ब्राहमण नाम है। असम के हिन्दू राजाओं की ओर से इस मन्दिर और उसके पुजारी को ज़मीन का एक टुकड़ा और कुछ जंगलों की आमदनी जागीर के रूप में दी गई थी, ताकि भोग का खर्च पूरा किया जा सके और पुजारी की आजीविका चल सके। जब यह प्रांत औरंगजेब के शासन-क्षेत्र में आया, तो उसने तुरंत ही एक फरमान के द्वारा इस जागीर को यथावत रखने का आदेश दिया।

उज्जैन का महाकालेश्वर मंदिर

हिन्दुओं और उनके धर्म के साथ औरंगज़ेब की सहिष्णुता और उदारता का एक और सबूत उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर के पुजारियों से मिलता है। यह शिवजी के प्रमुख मन्दिरों में से एक है, जहां दिन-रात दीप प्रज्ज्वलित रहता है। इसके लिए काफ़ी दिनों से प्रतिदिन चार सेर घी वहां की सरकार की ओर से उपलब्ध कराया जाता था और पुजारी कहते हैं कि यह सिलसिला मुगलकाल में भी जारी रहा। औरंगजेब ने भी इस परम्परा का सम्मान किया।

इस सिलसिले में पुजारियों के पास दुर्भाग्य से कोई फ़रमान तो उपलब्ध नहीं है, परन्तु एक आदेश की नक़ल ज़रूर है, जो औरंगज़ब के काल में शहज़ादा मुराद बख़्श की तरफ से जारी किया गया था। (5 शव्वाल 1061 हि. को यह आदेश शहंशाह की ओर से शहज़ादा ने मन्दिर के पुजारी देव नारायण के एक आवेदन पर जारी किया था। वास्तविकता की पुष्टि के बाद इस आदेश में कहा गया है कि मन्दिर के दीप के लिए चबूतरा कोतवाल के तहसीलदार चार सेर (अकबरी घी प्रतिदिन के हिसाब से उपल्ब्ध कराएँ। इसकी नक़ल मूल आदेश के जारी होने के 93 साल बाद (1153 हिजरी) में मुहम्मद सअदुल्लाह ने पुन: जारी की।

साधारणत: इतिहासकार इसका बहुत उल्लेख करते हैं कि अहमदाबाद में नागर सेठ के बनवाए हुए चिन्तामणि मन्दिर को ध्वस्त किया गया, परन्तु इस वास्तविकता पर पर्दा डाल देते हैं कि उसी औरंगज़ेब ने उसी नागर सेठ के बनवाए हुए शत्रुन्जया और आबू मन्दिरों को काफ़ी बड़ी जागीरें प्रदान कीं।

काशी विश्वनाथ का मन्दिर क्यों तोड़ना पड़ा

नि:संदेह इतिहास से यह प्रमाणित होता है कि औरंगजेब ने बनारस के विश्वनाथ मन्दिर और गोलकुण्डा की जामा-मस्जिद को ढा देने का आदेश दिया था, परन्तु इसका कारण कुछ और ही था। विश्वनाथ मन्दिर के सिलसिले में घटनाक्रम यह बयान किया जाता है कि जब औरंगज़ेब बंगाल जाते हुए बनारस के पास से गुज़र रहा था, तो उसके काफिले में शामिल हिन्दू राजाओं ने बादशाह से निवेदन किया कि वहाँ क़ाफ़िला एक दिन ठहर जाए तो उनकी रानियां बनारस जा कर गंगा नदी में स्नान कर लेंगी और विश्वनाथ जी के मन्दिर में श्रद्धा सुमन भी अर्पित कर आएँगी। औरंगज़ेब ने तुरंत ही यह निवेदन स्वीकार कर लिया और क़ाफिले के पडाव से बनारस तक पांच मील के रास्ते पर फ़ौजी पहरा बैठा दिया।

रानियां पालकियों में सवार होकर गईं और स्नान एवं पूजा के बाद वापस आ गईं, परन्तु एक रानी (कच्छ की महारानी) वापस नहीं आई, तो उनकी बड़ी तलाश हुई, लेकिन पता नहीं चल सका। जब औरंगज़ेब को मालूम हुआ तो उसे बहुत गुस्सा आया और उसने अपने फ़ौज के बड़े-बड़े अफ़सरों को तलाश के लिए भेजा। आखिर में उन अफ़सरों ने देखा कि गणेश की मूर्ति जो दीवार में जड़ी हुई है, हिलती है। उन्होंने मूर्ति हटवा कर देखा तो तहखाने की सीढ़ी मिली और गुमशुदा रानी उसी में पड़ी रो रही थी। उसकी इज़्ज़त भी लूटी गई थी और उसके आभूषण भी छीन लिए गए थे। यह तहखाना विश्वनाथ जी की मूर्ति के ठीक नीचे था।

राजाओं ने इस हरकत पर अपनी नाराज़गी जताई और विरोध प्रकट किया। चूंकि यह बहुत घिनौना अपराध था, इसलिए उन्होंने कड़ी से कड़ी कार्रवाई करने की मांग की। उनकी मांग पर औरंगज़ेब ने आदेश दिया कि चूंकि पवित्र-स्थल को अपवित्र किया जा चुका है। अत: विश्वनाथ जी की मूर्ति को कहीं और ले जाकर स्थापित कर दिया जाए और मन्दिर को गिरा कर ज़मीन को बराबर कर दिया जाए और महंत को गिरफ्तार कर लिया जाए।

डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द फ़ेदर्स एण्ड द स्टोन्स' में इस घटना को दस्तावेजों के आधार पर प्रमाणित किया है। पटना म्यूज़ियम के पूर्व क्यूरेटर डा. पी. एल. गुप्ता ने भी इस घटना की पुस्टि की है।

मस्जिद तोड़ने की घटना

गोलकुण्डा की जामा-मस्जिद की घटना यह है कि वहां के राजा, जो तानाशाह के नाम से प्रसिद्ध थे, रियासत की मालुगज़ारी वसूल करने के बाद दिल्ली का हिस्सा नहीं भेजते थे। कुछ ही वर्ष में यह रक़म करोड़ों की हो गई। तानाशाह ने यह ख़ज़ाना एक जगह ज़मीन में गाड़ कर उस पर मस्जिद बनवा दी। जब औरंगज़ेब को इसका पता चला तो उसने आदेश दे दिया कि यह मस्जिद गिरा दी जाए। अत: गड़ा हुआ खज़ाना निकाल कर उसे जन-कल्याण के कामों में ख़र्च किया गया।

ये दोनों मिसालें यह साबित करने के लिए काफ़ी हैं कि औरंगज़ेब न्याय के मामले में मन्दिर और मस्जिद में कोई फ़र्क़ नहीं समझता था। ''दुर्भाग्य से मध्यकाल और आधुनिक काल के भारतीय इतिहास की घटनाओं एवं चरित्रों को इस प्रकार तोड़-मरोड़ कर मनगढंत अंदाज़ में पेशकिया जाता रहा है कि झूठ ही ईश्वरीय आदेश की सच्चाई की तरह स्वीकार किया जाने लगा, और उन लोगों को दोषी ठहराया जाने लगा जो तथ्य और मनगढंत बातों में अन्तर करते हैं। आज भी साम्प्रदायिक एवं स्वार्थी तत्व इतिहास को तोड़ने-मरोडने और उसे ग़लत रंग देने में लगे हुए हैं।

औरंगजेब असहिष्णुता और धार्मिक कट्टरता के लिए बदनाम रहा, लेकिन राम की तपोस्थली भूमि चित्रकूट के मन्दाकिनी तट पर 328 साल पहले सन् 1683 में बना 'बाला जी मन्दिर' उसने ही बनवाया था। इतना ही नहीं, पूजा-अर्चना में कोई बाधा न आए, उसने इस मन्दिर को 330 बीघा बे-लगानी कृषि भूमि भी दान की।

मुग़लों का हिंदुस्तान!

जब मुगलों ने पूरे भारत को एक किया तो इस देश का नाम कोई इस्लामिक नहीं बल्कि "हिन्दुस्तान" रखा, हाँलाकि इस्लामिक नाम भी रख सकते थे, कौन विरोध करता ?

जिनको इलाहाबाद और फैजाबाद चुभता है वह समझ लें कि मुगलों के ही दौर में "रामपुर" बना रहा तो "सीतापुर" भी बना रहा। अयोध्या तो बसी ही मुगलों के दौर में। "राम चरित मानस" भी मुगलिया काल में ही लिखी गयी।

आज के वातावरण में मुगलों को सोचता हूँ, मुस्लिम शासकों को सोचता हूँ तो लगता है कि उन्होंने मूर्खता की। होशियार तो ग्वालियर का सिंधिया घराना था, होशियार मैसूर का वाडियार घराना भी था और जयपुर का राजशाही घराना भी था तो जोधपुर और पटियाला का भी राजघराना था।

टीपू सुल्तान हों या बहादुरशाह ज़फर, बेवकूफी कर गये और कोई चिथड़े चिथड़ा हो गया तो किसी को देश की मिट्टी भी नसीब नहीं हुई और सबके वंशज आज भीख माँग रहे हैं। अँग्रेजों से मिल जाते तो वह भी अपने महल बचा लेते और अपनी रियासतें बचा लेते, वाडियार, जोधपुर, सिंधिया, पटियाला और जयपुर राजघराने की तरह उनके भी वंशज आज ऐश करते। उनके भी बच्चे आज मंत्री विधायक बनते।

यह आज का दौर है, यहाँ "भारत माता की जय" और "वंदेमातरम" कहने से ही इंसान देशभक्त हो जाता है, चाहें उसका इतिहास देश से गद्दारी का ही क्यूँ ना हो।

बहादुर शाह ज़फर ने जब 1857 के गदर में अँग्रेजों के खिलाफ़ पूरे देश का नेतृत्व किया और उनको पूरे देश के राजा रजवाड़ों तथा बादशाहों ने अपना नेता माना। भीषण लड़ाई के बाद अंग्रेजों की छल कपट नीति से बहादुरशाह ज़फर पराजित हुए और गिरफ्तार कर लिए गये।

ब्रिटिश कैद में जब बहादुर शाह जफर को भूख लगी तो अंग्रेज उनके सामने थाली में परोसकर उनके बेटों के सिर ले आए। उन्होंने अंग्रेजों को जवाब दिया कि - "हिंदुस्तान के बेटे देश के लिए सिर कुर्बान कर अपने बाप के पास इसी अंदाज में आया करते हैं।"

बेवकूफ थे बहादुरशाह ज़फर। आज उनकी पुश्तें भीख माँग रहीं हैं।

अपने इस हिन्दुस्तान की ज़मीन में दफन होने की उनकी चाह भी पूरी ना हो सकी और कैद में ही वह "रंगून" और अब वर्मा की मिट्टी में दफन हो गये। अंग्रेजों ने उनकी कब्र की निशानी भी ना छोड़ी और मिट्टी बराबर करके फसल उगा दी, बाद में एक खुदाई में उनका वहीं से कंकाल मिला और फिर शिनाख्त के बाद उनकी कब्र बनाई गयी ! सोचिए कि आज "बहादुरशाह ज़फर" को कौन याद करता है ? क्या मिला उनको देश के लिए दी अपने खानदान की कुर्बानी से ? ऐसा इतिहास और देश के लिए बलिदान किसी संघी का होता तो अब तक सैकड़ों शहरों और रेलवे स्टेशनों का नाम उनके नाम पर हो गया होता।

क्या इनके नाम पर हुआ ?

नहीं ना ? इसीलिए कहा कि अंग्रेजों से मिल जाना था, ऐसा करते तो ना कैद मिलती ना कैद में मौत, ना यह ग़म लिखते जो रंगून की ही कैद में लिखा =

लगता नहीं है जी मेरा उजड़े दयार में,
किस की बनी है आलम-ए-नापायदार में।
उम्र-ए-दराज़ माँग के लाये थे चार दिन,
दो आरज़ू में कट गये, दो इन्तेज़ार में।
कितना है बदनसीब "ज़फर" दफ्न के लिए,
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कू-ए-यार में॥

-साइबर नजर